भारत सरकार

भारत
का
विधि
आयोग

शीघ्र न्याय के लिए आवश्यकता - कुछ सुझाव

रिपोर्ट सं. 221

अप्रैल, 2009

भारत का विधि आयोग

(रिपोर्ट सं. 221)

शीघ्र न्याय के लिए आवश्यकता - कुछ सुझाव

केंद्रीय विधि और न्याय मंत्री, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार को डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्, अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग द्वारा 30 अप्रैल, 2009 को प्रस्तुत की गई ।

18वें विधि आयोग का 1 सितंबर, 2006 से तीन वर्ष की अवधि के लिए भारत सरकार के विधि और न्याय मंत्रालय के विधि कार्य विभाग, नई दिल्ली के तारीख 16 अक्तूबर, 2006 के आदेश सं. ए-45012/1/2006-प्रशा.III (वि.का.) द्वारा गठन किया गया था ।

विधि आयोग अध्यक्ष, सदस्य-सचिव, एक पूर्णकालिक सदस्य और 7 अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बना है ।

अध्यक्ष

माननीय डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

पूर्णकालिक सदस्य

प्रो. डा. ताहिर महमूद

अंशकालिक सदस्य

डा. (श्रीमती) देविन्दर कुमारी रहेजा
डा. के. एन. चंद्रशेखरन पिल्लै
प्रो. (श्रीमती) लक्ष्मी जमभोलकर
श्रीमती कीर्ति सिंह
श्री न्यायमूर्ति आई. वेंकटनारायण
श्री ओ. पी. शर्मा
डा. (श्रीमती) श्यामल्हा पप्पू

विधि आयोग भारतीय विधि संस्थान भवन,
दूसरी मंजिल, भगवान दास रोड,
नई दिल्ली - 110 001 में अवस्थित है

विधि आयोग कर्मचारिवृंद

सदस्य - सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

अनुसंधान कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव एवं विधि अधिकारी
श्रीमती पवन शर्मा	:	अपर विधि अधिकारी
श्री जे. टी. सुलक्षण राव	:	अपर विधि अधिकारी
श्री ए. के. उपाध्याय	:	उप विधि अधिकारी
डा. वी. के. सिंह	:	सहायक विधि सलाहकार
डा. आर. एस. श्रीनेत	:	अधीक्षक (विधिक)

प्रशासनिक कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव एवं विधि अधिकारी
श्री डी. चौधरी	:	अवर सचिव
श्री एस. के. बसु	:	अनुभाग अधिकारी
श्रीमती रजनी शर्मा	:	सहायक पुस्तकालय और सूचना अधिकारी

इस रिपोर्ट का पाठ इंटरनेट पर http://www.lawcommissionofindia.nic.in पर उपलब्ध है

© भारत सरकार
भारत का विधि आयोग

इस दस्तावेज का पाठ (सरकारी चिह्नों को छोड़कर) किसी रूप विधान में या किसी माध्यम से निःशुल्क प्रत्युत्पादित किया जा सकता है परंतु यह कि उसको शुद्ध रूप से प्रत्युत्पादित किया जाए और उसका भ्रामक संदर्भ में उपयोग न किया जाए । इस सामग्री को सरकार के प्रतिलिप्यधिकार के रूप में अभिस्वीकार किया जाना चाहिए और दस्तावेज का नाम विनिर्दिष्ट किया जाना चाहिए ।

इस रिपोर्ट से संबंधित किसी पूछताछ के लिए सदस्य-सचिव को डाक द्वारा भारत का विधि आयोग, दूसरी मंजिल, भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवान दास रोड, नई दिल्ली- 110 001, भारत के पते पर पत्र भेजकर या ई-मेल द्वारा : **lci-dla@nic.in** पर संबोधित किया जाना चाहिए ।

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्
(भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का उच्चतम न्यायालय)
अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग

भा. वि. सं. भवन (दूसरा तल),
भगवान दास रोड,
नई दिल्ली-110001
टेली. : 91-11-23384475
फैक्स : 91-11-23383564

अ.शा.पत्र सं. 6(3)149/2008-वि.आ.(वि.अ.)

30 अप्रैल, 2009

प्रिय डा. भारद्वाज जी

विषय : शीघ्र न्याय के लिए आवश्यकता - कुछ सुझाव ।

मैं उपर्युक्त विषय पर भारत के विधि आयोग की 221वीं रिपोर्ट इसके साथ अग्रेषित कर रहा हूं ।

न्यायालयों में, विशेष रूप से उच्च न्यायालयों और जिला न्यायालयों में, बकाया मामलों का बढ़ना मुकदमा लड़ने वालों और राज्य के लिए बड़ी चिंता का कारण हो गया है । प्रत्येक नागरिक का यह मौलिक अधिकार है कि वह शीघ्र न्याय प्राप्त करे और मामले का शीघ्र विचारण अच्छे न्यायिक प्रशासन की मौलिक अपेक्षा है । इस रिपोर्ट में, हमने कुछ प्रस्ताव किए हैं, जो, जब उन्हें प्रभावी बनाया जाता है तब, न केवल शीघ्र न्याय देने में किंतु तुच्छ, तंग करने वाले और विलासी मुकदमों का नियंत्रण करने में भी सहायक होंगे ।

विधि आयोग ने स्वप्रेरणा से यह अध्ययन किया है और वह निम्नलिखित संशोधनों की सिफारिश करता है :

1. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 और आदेश V का तथा संबंधित न्यायालय के नियमों का संशोधन - विलंब कम करने के लिए यह आवश्यक है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के समतुल्य उपबंधों का किसी मुकदमा लड़ने वाले के द्वारा फाइल किए जाने के लिए प्रस्तावित सभी प्रकार के सिविल वादों और मामलों के लिए प्रारंभ किया जाए ।

निवास : संख्या 1, जनपथ, नई दिल्ली 110001. टेलीफोन नं. : 91-11-23019465, 23793488, 23792745
ई-मेल : ch.lc@sb.nic.in

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378, धारा 397 और धारा 401 का संशोधन -

(i) परिवाद मामलों में भी किसी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध सत्र न्यायालय में, निःसंदेह, उसके द्वारा विशेष इजाजत दिए जाने के अधीन रहते हुए, अपील का उपबंध किया जाए ।

(ii) जहां जिला मजिस्ट्रेट या राज्य लोक अभियोजक को दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील करने का निदेश नहीं देता है वहां व्यथित व्यक्ति या सुचनाकर्ता को अपील करने का, यद्यपि अपीलीय न्यायालय की इजाजत से, अधिकार होना चाहिए ।

(iii) मजिस्ट्रेटों द्वारा अर्थात् सत्र न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध पुनरीक्षण फाइल करने के लिए, दो वैकल्पिक मंचों के स्थान पर, जैसा अब उपबंधित है, केवल एक मंच होना चाहिए ।

(iv) विधानमंडल को विनिर्दिष्ट रूप से पुनरीक्षणीय आदेशों को प्रवर्गित करना चाहिए, बजाय इसके कि इस मामले को ''अंतरवर्ती आदेश'' अभिव्यक्ति के विभिन्न निर्वचनों द्वारा कारित संभ्रम के लिए छोड़ दिया जाए ।

3. संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 का संशोधन - यह आज्ञापक बनाया जाना चाहिए कि प्रत्येक विक्रय के लिए प्रतिफल का संदाय बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से किया जाएगा ।

सादर

भवदीय,

ह/-

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्)

डा. एच. आर. भारद्वाज,
केंद्रीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
विधि और न्याय मंत्रालय,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली - 110001

शीघ्र न्याय के लिए आवश्यकता - कुछ सुझाव

विषय-वस्तु

पृष्ठ सं.

I : प्रस्तावना 9

II : विचार किए गए उपबंध

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 - धारा 80 और आदेश V 10-18

(ख) दंड प्रक्रिया संहिता 1973 - धारा 378, धारा 397 और धारा 401 18-23

(ग) संपत्ति का अंतरण अधिनियम, 1882 23

अध्याय - III : सिफारिशें 24-25

1. प्रस्तावना

1.1 न्यायालयों में, विशेष रूप से उच्च न्यायालयों और जिला न्यायालयों में बकाया मामलों का बढ़ना, मुकदमा लड़ने वालों और राज्य के लिए बड़ी चिंता का कारण हो गया है । प्रत्येक नागरिक का यह मौलिक अधिकार है कि वह शीघ्र न्याय प्राप्त करे और मामले का शीघ्र विचारण अच्छे न्यायिक प्रशासन की मौलिक अपेक्षा है । इस रिपोर्ट में, हमने कुछ प्रस्ताव किए हैं, जो, जब उन्हें प्रभावी बनाया जाता है तब, न केवल शीघ्र न्याय देने में किंतु तुच्छ तंग करने वाले और विलासी मुकदमों का नियंत्रण करने में भी सहायक होंगे ।

1.2 न्यायालयों में बकाया मामले बड़ी तेजी के साथ बढ़ रहे हैं और कोई राहत दिखाई नहीं पड़ रहा है । यह विशेष रूप से इसलिए हैं कि मामलों का संस्थापन न्यायिक प्रशासन के सभी स्तरों पर उनके निपटारे से अधिक हो रहा है । अच्छे न्यायिक प्रशासन की मौलिक अपेक्षा शीघ्र न्याय है । बहुधा तुच्छ, तंग करने वाले और विलासी मुकदमें भी आ जाते हैं और वे बढ़ते हुए बकाया मामलों को और भी बढ़ा देते हैं । मामलों का, विशेष रूप से प्रकीर्ण मामलों का (उन मामलों को अपवर्जित करते हुए जो साक्षियों के साक्ष्य की अपेक्षा करते हैं) संबंधित पक्षकारों को अवसर देने के पश्चात् प्रारंभिक प्रक्रम पर ही विनिश्चय करने के प्रयास किए जाने चाहिए ।

1.3 वर्तमान रिपोर्ट शीघ्र न्याय के लिए विधिक परिवर्तनों की सिफारिश करने वाली विधि आयोग की विभिन्न पूर्ववर्ती रिपोर्टों के अनुक्रम में है ।

II. विचार किए गए उपबंध

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 - धारा 80 और आदेश V

2.1 मामलों का निपटारा करने में विलंब कम करने के लिए यह आवश्यक है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के समतुल्य उपबंध किसी मुकदमा लड़ने वाले के द्वारा फाइल किए जाने के लिए प्रस्तावित सभी प्रकार के सिविल वादों और मामलों के लिए प्रारंभ किए जाएं ।

2.2 उच्चतम न्यायालय ने **बिहारी चौधरी** बनाम **बिहार राज्य**[1] में अभिनिर्धारित किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 में अंतर्निहित उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सरकार द्वारा किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध कोई वाद संस्थित किए जाने के पूर्व सरकार या संबंधित अधिकारी को उस दावे की, जिसके संबंध में वाद फाइल किया जाना प्रस्तावित है, संवीक्षा करने के लिए अवसर प्रदान किया जाए और यदि उसे न्यायोचित दावा पाया जाता है तो तुरंत कार्रवाई की जाए और तद्द द्वारा अनावश्यक मुकदमेंबाजी से बचा जाए और उस व्यक्ति को, जिसने पर्याप्त व्यय और विलंब अंतर्वलित करने वाला वाद संस्थित करने के लिए सूचना जारी की है, प्रेरित किए बिना दावा परिनिर्धारित करके सार्वजनिक समय और धन को बचाया जाए । सुसंगत पैराओं के उद्धरण नीचे दिए गए हैं :

> "3. हम इस मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 से संबंधित हैं, जैसी वह 1976 के अधिनियम 104 द्वारा उसका संशोधन किए जाने के पूर्व थी (यहां तक कि संशोधित उपबंध के अधीन भी जहां तक कि इस प्रकृति के वाद का संबंध है, स्थिति अपरिवर्तित है) ।
>
> ***

[1] (1984) 2 एस. सी. सी. 627.

इस धारा का प्रभाव सरकार के या ऐसे कार्य की बावत जिसके बारे में यह तात्पर्यित है कि वह ऐसे लोक अधिकारी द्वारा अपनी पदीय हैसियत में कियागया है, किसी वाद को संस्थित करने के विरुद्ध वर्जन अधिरोपित करना है जब तक कि उस धारा की उपधारा (1) के अंतिम भाग में परिगणित विशिष्टियों का कथन करने वाली लिखित सूचना सरकार के सचिव या संबंधित जिले के कलेक्टर के कार्यालय में परिदत्त कर दिए जाने या छोड़ दिए जाने और लोक अधिकारी की दशा में उसको कर दिए जाने या उसके कार्यालय में छोड़ दिए जाने के पश्चात् दो मास का अवसान न हो गया हो । जब हम उस धारा की स्कीम की परीक्षा करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है किं वह धारा लोक नीति के अध्युपाय के रूप में यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से अधिनियमित की गई है कि सरकार के या किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध कोई वाद संस्थित किए जाने के पूर्व, सरकार या संबंधित अधिकारी को उस दावे की, जिसके संबंध में वह वाद फाइल किया जाना प्रस्तावित है, संवीक्षा करने का अवसर प्रदान किया जाए और यदि उस दावे को न्यायोचित पाया जाए तो तुरंत कार्रवाई की जाए और तद्द्वारा अनावश्यक मुकदमेबाजी से बचा जाए और उस व्यक्ति को, जिसने सूचना जारी की है, पर्याप्त व्यय और विलंब अंतर्वलित करने वाले वाद को संस्थित करने के लिए प्रेरित किए बिना दावा परिनिर्धारित करके सार्वजनिक समय और धन को बचाया जाए । सरकार से प्राइवेट पक्षकारों के असमान, आशा की जाती है कि वह सूचना में अंवर्तलित मामले पर अत्यधिक उद्देश्यपूर्ण रीति से, ऐसी विधिक सलाह प्राप्त करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, विचार करेगी और लोक हित में उस धारा द्वारा अनुज्ञात दो मास की अवधि के भीतर इस बारे में कि दावा न्यायोचित और युक्तियुक्त है या नहीं और अनुध्यात वाद से शीघ्र बातचीत और परिनिर्धारण द्वारा बचा जाना चाहिए या दावे को वाद का, यदि और जब उसे संस्थित किया जाता है, विरोध करके रोका जाना चाहिए, विनिश्चय करेगी । इस धारा में अंतर्विष्ट आज्ञापक उपबंध में

स्पष्ट रूप से लोक प्रयोजन अंतर्निहित है जो प्रस्तावित वाद की विशिष्टियाँ उप वर्णित करते हुए और सरकार को या किसी लोक अधिकारी को, उनके विरुद्ध वाद संस्थित किए जाने के पूर्व, दो मास का समय देते हुए सूचना के जारी करने पर जोर देता है । इस धारा का उद्देश्य न्याय का संवर्धन और अनावश्यक मुकदमेबाजी से दूर रहकर लोक हित को सुनिश्चित करना है ।''

2.3 सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के विद्यमान उपबंध चुनकर नीचे दिए गए हैं :

''**सूचना -(1)** उसके सिवाय जैसा उपधारा (2) में उपबंधित है, सरकार के (जिसके अंतर्गत जम्मू-कश्मीर राज्य की सरकार भी आती है) विरुद्ध या ऐसे कार्य की बावत जिसके बारे में यह तात्पर्यित है कि वह ऐसे लोक अधिकारी द्वारा अपनी पदीय हैसियत में कियागया है, लोक अधिकारी के विरुद्ध, कोई वाद तब तक संस्थित नहीं किया जाएगा जब तक वाद-हेतुक का, वादी के नाम, वर्णन और निवास-स्थान का और जिस अनुतोष का वह दावा करता है उसका, कथन करने वाली लिखित सूचना -

(क) केंद्रीय सकार के विरुद्ध वाद की दशा में, वहां के सिवाय जहां वह रेल से संबंधित है, उस सरकार के सचिव को ;

(ख) केंद्रीय सरकार के विरुद्ध वाद की दशा में, जहां वह रेल से संबंधित है, उस रेल के प्रधान प्रबंधक को ;

(खख) जम्मू-कश्मीर राज्य की सरकार के विरुद्ध वाद की दशा में, उस सरकार के मुख्य सचिव को या उस सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अन्य अधिकारी को ;

(ग) किसी अन्य राज्य सरकार के विरुद्ध वाद की दशा में, उस सरकार के सचिव को या जिले के कलेक्टर को ;

परिदत्त किए जाने या उसके कार्यालय में छोड़े जाने के, और लोक अधिकारी की दशा में उसे परिदत्त किए जाने या उसके कार्यालय में छोड़े जाने केपश्चात्, दो मास का अवसान न हो गया हो, और वादपत्र में यह कथन अंतर्विष्ट होगा कि ऐसी सूचना ऐसे परिदत्त कर दी गई है या छोड़ दी गई है ।

(2) सरकार के (जिसके अंतर्गत जम्मू-कश्मीर राज्य की सरकार भी आती है) विरुद्ध या ऐसे कार्य की बाबत जिसके बारे में यह तात्पर्यित है कि वह ऐसे लोक अधिकारी द्वारा अपनी पदीय हैसियत में किया गया है, लोक अधिकारी के विरुद्ध, कोई अत्यावश्यक या तुरंत अनुतोष अभिप्राप्त करने के लिए कोई वाद, न्यायालय की इजाजत से, उपधारा (1) द्वारा यथाअपेक्षित किसी सूचना की तामील किए बिना, संस्थित किया जा सकेगा ; किंतु न्यायालय वाद में अनुतोष, चाहे अंतरिम या अन्यथा, यथास्थिति, सरकार या लोक अधिकारी को वाद में आवेदित अनुतोष की बाबत हेतुक दर्शित करने का उचित अवसर देने के पश्चात् ही प्रदान करेगा, अन्यथा नहीं :

परंतु यदि न्यायालय का पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, यह समाधान हो जाता है कि वाद में कोई अत्यावश्यक या तुरंत अनुतोष प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है तो वह वाद पत्र को वापस कर देगा कि उसे उपधारा (1) की अपेक्षाओं का पालन करने के पश्चात् प्रस्तुत किया जाए ।

(3) सरकार के विरुद्ध या ऐसे कार्य की बाबत जिसके बारे में यह तात्पर्यित है कि वह ऐसे लोक अधिकारी द्वारा अपनी पदीय हैसियत में किया गया है, लोक अधिकारी के विरुद्ध संस्थित किया गया कोई वाद केवल इस कारण खारिज नहीं कियाजाएगा कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट सूचना में कोई त्रुटि या दोष है, यदि ऐसी सूचना में -

(क) वादी का नाम, वर्णन और निवास-स्थान इस प्रकार दिया गया है जो

सूचनाकी तामील करने वाले व्यक्ति की शनाख्त करने में समुचित प्राधिकारी या लोक अधिकारी को समर्थ करे और ऐसी सूचना उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट समूचित प्राधिकारी के कार्यालय में परिदत्त कर दी गई है या छोड़ दी गई है, तथा

(ख) वाद-हेतुक और वादी द्वारा दावा कियागया अनुतोष सारतः उपदर्शित किया गया है ।

2.4 समन जारी करने पर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश V के नियम 1 से नियम 8 तक के विद्यमान उपबंध यथा निम्लिखित हैं :

1. समन - (1) जब वाद सम्यक् रूप से संस्थित किया जा चुका हो तब समन में विनिर्दिष्ट किए जाने वाले दिन को उपसंजात होने और दावे का उत्तर देने के लिए समन प्रतिवादी के नाम निकाला जाएगा :

परंतु जब प्रतिवादी वादपत्र के उपस्थित किए जाने पर ही उपसंजात हो जाए और वादी का दावा स्वीकार कर ले तब ऐसा कोई समन नहीं निकाला जाएगा :

परंतु यह और कि जहां समन निकाला गया है वहां न्यायालय प्रतिवादी को अपनी उपसंजाति की तारीख पर अपनी प्रतिरक्षा का लिखित कथन, यदि कोई हो, फाइल करने का निदेश दे सकेगा और समन में इस आशय की प्रविष्टि कराएगा ।

(2) वह प्रतवादी, जिसके नाम उपनियम (1) के अधीन समन निकाला गया है -

(क) स्वयं, अथवा

(ख) ऐसे प्लीडर द्वारा, जो सम्यक् रूप से अनुदिष्ट हो और वाद से संबंधित सभी सारवान् प्रश्नों का उत्तर देने के लिए समर्थ हो, अथवा

(ग) ऐसे प्लीडर द्वारा जिसके साथ ऐसा कोई व्यक्ति है जो ऐसे सभी प्रश्नों का उत्तर देने के लिए समर्थ है, उपसंजात हो सकेगा ।

(3) हर ऐसा समन न्यायाधीश या ऐसे अधिकारी द्वारा, जो वह नियुक्त करे, हस्ताक्षरित होगा और उस पर न्यायालय की मुद्रा लगी होगी ।

2. समनों से उपाबद्ध वादपत्र की प्रति - हर समन के साथ वादपत्र की एक प्रति होगी ।

3. न्यायालय प्रतिवादी या वादी को स्वयं उपसंजात होने के लिए आदेश दे सकेगा- (1) जहां न्यायालय के पास प्रतिवादी की स्वीय उपसंजाति अपेक्षित करने के लिए कारण हो वहां समन द्वारा यह आदेश किया जाएगा कि समन में विनिर्दिष्ट तारीख को वह न्यायालय में स्वयं उपसंजात हो ।

(2) जहां न्यायालय के पास वादी की उसी दिन स्वीय उपसंजाति अपेक्षित करने के लिए कारण हो वहां वह ऐसी उपसंजाति के लिए आदेश करेगा ।

4. किसी भी पक्षकार के स्वयं उपसंजात होने के लिए तब तक आदेश नहीं किया जाएगा जब तक कि वह किन्हीं निश्चित सीमाओं के भीतर निवासी न हो - किसी भी पक्षकार को स्वयं उपसंजात होने के लिए केवल तभी आदेश कियाजाएगा जब वह -

(क) न्यायालय की मामूली आरंभिक अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर निवास करता है, अथवा

(ख) ऐसी सीमाओं के बाहर किंतु ऐसे स्थान में निवास करता है जो न्यायसदन से पचास मील से कम या (जहां उस स्थान के जहां वह निवास करता है और उस स्थान के जहां न्यायालय स्थित है, बीच पंचषष्ठांश दूरी तक रेल या स्टीमर संचार या अन्य स्थापित लोक प्रवहण है वहां) दो सौ

मील से कम दूर है ।

5. समन या तो विवाद्यकों के स्थिरीकरण के लिए या अंतिम निपटारे के लिए होगा - न्यायालय समन निकालने के समय यह अवधारित करेगा कि क्या वह केवल विवाद्यकों के स्थिरीकरण के लिए होगा या वाद के अंतिम निपटारे के लिए होगा और समन में तदनुसार निदेश अंतर्विष्ट होगा :

परंतु लघुवाद न्यायालय द्वारा सुने जाने वाले हर वाद में समन वाद के अंतिम निपटारे के लिए होगा ।

6. प्रतिवादी की उपसंजाति के लिए दिन नियत किया जाना - नियम 1 के उप नियम (1) के अधीन प्रतिवादी की उपसंजाति के लिए दिन, न्यायालय के चालू कारबार, प्रतिवादी के निवास-स्थान और समन की तामील के लिए आवश्यक समय के प्रति निर्देश से नियत किया जाएगा और वह दिन ऐसे नियत किया जाएगा कि प्रतिवादी को ऐसे दिनउपसंजात होने और उत्तर देने को समर्थ होने के लिए पर्याप्त समय मिल जाए ।

7. समन प्रतिवादी को यह आदेश देगा कि वह वे दस्तावेज पेश करे जिन पर वह निर्भर करता है - उपसंजाति और उत्तर के लिए समन में प्रतिवादी को आदेश होगा कि वह अपने कब्जे या शक्ति में की आदेश VIII के नियम 1क में विनिर्दिष्ट ऐसी सब दस्तावेजों या उनकी प्रतियों को पेश करे जिन पर अपने मामले के समर्थन में निर्भर करने का उसका आशय है ।

8. अंतिम निपटारे के लिए समन निकाले जाने पर प्रतिवादी को यह निदेश होगा कि वह अपने साक्षियों को पेश करे - जहां समन वाद के अंतिम निपटारे के लिए है वहां उसमें प्रतिवादी को यह निदेश भी होगा कि जिन साक्षियों के साक्ष्य परअपने मामले के समर्थन में निर्भर करने का उसका आशय है उन सब को उसी दिन पेश

करे जो उसकी उपसंजाति के लिए नियत है ।

2.5 इस समय राज्य या किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध वाद लाने का प्रस्ताव करने वाले किसी मुकदमा लड़ने वाले व्यक्ति को लिखित रूप में दो मास की सूचना देनी होती है और आपातस्थिति में वह न्यायालय की अनुज्ञा से मामला फाइल कर सकता है । ऐसा ही एक उपबंध सभी अन्य मामलों के लिए प्रारंभ किया जा सकता है । जब किसी व्यक्ति को सिविल मामला फाइल करना होता है तो उससे प्रभावित पक्षकार को दो मास की सूचना देने की अपेक्षा की जा सकती है । न्यायालय में अपना मामला प्रस्तुत करने के पूर्व उसे वादपत्र की एक प्रति की प्रभावित पक्षकार पर रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा या मान्यता प्राप्त कुरियर सेवा द्वारा अवश्य तामील करनी चाहिए और अपने वाद पत्र के साथ वाद-पत्र की एक प्रति सहित सूचना की तामिल के तथ्य का कथन करते हुए एक शपथ पत्र फाइल करना चाहिए ।

2.6 इसी प्रकार जब कोई मुकदमा लड़ने वाला किसी उच्च न्यायालय में या उच्चतम न्यायालय में कोई रिट याचिका फाइल करता है तो उससे कम से कम चार सप्ताह की सूचना देने की और याचिका की एक प्रति की भी विरोधी पक्षकार पर रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा या मान्यता प्राप्त कुरियर सेवा द्वारा तामिल करने की अपेक्षा की जानी चाहिए । ऐसे मामलों में जब सूचना की और याचिका की एक प्रति की तामील की जाती है, तो उससे न्यायालय के माध्यम से पुनः नए सिरे से कार्रवाई करने की, सिवाए सुनवाई की उस तारीख की सूचना देने के, जो न्यायालय द्वारा नियत की जाए, अपेक्षा नहीं की जाएगी । यदि ऐसा किया जाता है तो न्यायालय को सभी पक्षकारों को सुनने का अवसर प्राप्त होगा और वह स्वीकार करने के प्रक्रम पर ही, सिवाए वहां के जहां न्यायालय पक्षकारों को साक्ष्य देने के लिए निदेशित करता है, मामले का विनिश्चय करने में समर्थ होगा । इसके अतिरिक्त दोनों पक्षकारों की उपस्थिति तुच्छ मुकदमेबाजी को समाप्त कर देगी ।

2.7 तथापि यदि कोई मामला अत्यावश्यक है और सूचना उसका प्रयोजन ही विफल

कर देगी, तो न्यायालय सूचना से अभिमुक्ति दे सकता है और वादी या याचिकाकर्ता को, अत्यावश्यकता के कारण देते हुए, सुन सकता है । यदि अत्यावश्यकता नहीं पाई जाती है तो वाद-पत्र/याचिका फाइल करने के लिए, यदि आवश्यक हो तो, सूचना देने के पश्चात् और वाद-पत्र/ याचिका की प्रति की तामील करने के पश्चात्, वापस की जा सकती है । इससे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 और आदेश V का तथा संबंधित न्यायालय के नियमों का भी संशोधन आवश्यक होगा । इससे मुकदमेबाजी के पूर्व मध्यस्थता और विवादों के परिनिर्धारण को प्रोत्साहन प्राप्त होगा ।

(ख) दंड प्रक्रिया संहिता 1973 - धारा 378, धारा 397 और धारा 401

2.8 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 की उपधारा (4) और उपधारा (5), जो दोषमुक्ति की दशा में अपील के लिए उपबंध करती है, जैसा वे आज है, निम्नलिखित रूप में है :

> "(4) यदि दोषमुक्ति का ऐसा आदेश परिवाद पर संस्थित किसी मामले में पारित किया गया है और उच्च न्यायालय, परिवादी द्वारा उससे इस निमित्त आवेदन किए जाने पर, दोषमुक्ति के आदेश की अपील करने की विशेष इजाजत देता है तो परिवादी ऐसी अपील उच्च न्यायालय में उपस्थित कर सकता है ।
>
> (5) दोषमुक्ति के आदेश से अपील करने की विशेष इजाजत दिए जाने के लिए उपधारा (4) के अधीन कोई आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा, उस दशा में जिसमें परिवादी लोक सेवक है उस दोषमुक्ति के आदेश की तारीख से संगणित, छह मास की समाप्ति के पश्चात् और प्रत्येक अन्य दशा में ऐसे संगणित साठ दिन की समाप्ति के पश्चात् ग्रहण नहीं किया जाएगा ।"

2.9 मजिस्ट्रेटों द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेशों के विरुद्ध सभी अपीलें 2005 के अधिनियम 25 द्वारा धारा 378 का संशोधन किए जाने के पूर्व उच्च न्यायालय में फाइल की जा रही थी । अब 23.6.2006 से, पुलिस रिपोर्ट पर फाइल किए गए मामलों में संज्ञेय

और अजमानतीय अपराधों के संबंध में मजिस्ट्रेटों द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेशों के विरुद्ध अपीलें सत्र न्यायालय में फाइल की जा रही है, देखिए उक्त धारा की उपधारा (1) का खंड (क) । किंतु परिवाद पर संस्थित किए गए किसी मामले में पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में ही फाइल हो रही है, यदि परिवादी द्वारा उसको किए गए किसी आवेदन पर उसके द्वारा विशेष इजाजत दी गई है, देखिए उक्त धारा की उपधारा (4) ।

2.10 धारा 378 में इस दृष्टि से परिवर्तन की आवश्यकता है कि उसे परिवाद मामलों में भी सत्र न्यायालय में, निःसंदेह, उसके द्वारा विशेष इजाजत देने के अधीन रहते हुए, अपील फाइल करने के लिए समर्थ बनाया जाए ।

2.11 आगे, इस समय, पुलिस रिपोर्टों पर फाइल किए गए मामलों में अपील मजिस्ट्रेटों द्वारा (जहां अपराध संज्ञेय और अजमानतीय है) या सत्र न्यायालयों द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेशों के विरुद्ध, यथास्थिति, जिला मजिस्ट्रेट या राज्य सरकार की प्रेरणा पर ही फाइल की जा सकती है, देखिए धारा 378 की उपधारा (1) । ऐसे मामलों में, व्यथित व्यक्ति या सूचनाकर्ता स्वयं अपील फाइल नहीं कर सकता है । तथापि वह पुनरीक्षण के लिए आवेदन कर सकता है । यदि पुनरीक्षण करने वाला न्यायालय पाता है कि अभियुक्त को गलत रूप से दोषमुक्त किया गया है तो वह धारा 401 की उपधारा (3) की दृष्टि से उसे दोषसिद्ध नहीं कर सकता है किंतु उसे मामले को प्रतिप्रेषित करना होगा । यह एक जटिल प्रक्रिया है और इसमें धन और समय दोनों का अपव्यय अंतर्वलित है । इस उपबंध में भी परिवर्तन की आवश्यकता है और ऐसे मामलों में भी, जहां जिला मजिस्ट्रेट या राज्य लोक अभियोजक को दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील करने के लिए निदेशित नहीं करते हैं वहां व्यथित व्यक्ति या सूचनाकर्ता को अपील करने का, यद्यपि अपीलीय न्यायालय की इजाजत से, अधिकार होना चाहिए । इससे व्यथित व्यक्ति को भी निचले न्यायालय द्वारा रिकार्ड किए गए तथ्यों, निष्कर्षों पर आपत्ति करने का अवसर प्राप्त

होगा । यह भी कि इससे निचली न्यायपालिका में अधिक पारदर्शिता और उत्तरदायित्व आएगा जैसेकि इस समय, दोषमुक्ति की प्रतिशतता काफी अधिक है ।

2.12 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अभिलेख मंगाने के लिए उपबंध करती है और वह यथा निम्नलिखित है :

> "(1) उच्च न्यायालय या कोई सेशन न्यायाधीश अपनी स्थानीय अधिकारिता के अंदर स्थित किसी अवर दंड न्यायालय के समक्ष की किसी कार्यवाही के अभिलेख को, किसी अभिलिखित या पारित किए गए निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में और ऐसे अवर न्यायालय की किन्हीं कार्यवाहियों की नियमितता के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन से, मंगा सकता है और उसकी परीक्षा कर सकता है और ऐसा अभिलेख मंगाते समय निदेश दे सकता है कि अभिलेख की परीक्षा लंबित रहने तक किसी दंडादेश का निष्पादन निलंबित किया जाए और यदि अभियुक्त परिरोध में है तो उसे जमानत पर याउसके अपने बंध पत्र पर छोड़ दिया जाए ।
>
> ***स्पष्टीकरण*** - सभी मजिस्ट्रेट, चाहे वे कार्यपालक हों या न्यायिक और चाहे वे आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग कर रहे हों, या अपीली अधिकारिता का, इस उपधारा के और धारा 398 के प्रयोजनों के लिए सेशन न्यायाधीश से अवर समझे जाएंगे ।
>
> (2) उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग किसी अपील, जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही में पारित किसी अंतर्वर्ती आदेश की बाबत नहीं किया जाएगा ।
>
> (3) यदि किसी व्यक्ति द्वारा इस धारा के अधीन आवेदन या तो उच्च न्यायालय को या सेशन न्यायाधीश को किया गया है तो उसी व्यक्ति द्वारा कोई और आवेदन

उनमें से दूसरे के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाएगा ।''

2.13 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की शक्तियों को अभिकथित करती है, जैसी वह आज है, निम्नलिखित रूप में है :

''उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की शक्तियां - (1) ऐसी किसी कार्यवाही के मामले में, जिसका अभिलेख उच्च न्यायालय ने स्वयं मंगवाया है या जिसकी उसे अन्यथा जानकारी हुई है, वह धारा 386, धारा 389, धारा 390 और धारा 391 द्वारा अपील न्यायालय को या धारा 307 द्वारा सेशन न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों में से किसी का स्वविवेकानुसार प्रयोग कर सकता है और जब वे न्यायाधीश, जो पुनरीक्षण न्यायालय में पीठासीन हैं, राय में समान रूप से विभाजित हैं तब मामले का निपटारा धारा 392 द्वारा उपबंधित रीति से किया जाएगा ।

(2) इस धाराके अधीन कोई आदेश, जो अभियुक्त या अन्य व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, तब तक न किया जाएगा जब तक उसे अपनी प्रतिरक्षा में या तो स्वयं या प्लीडर द्वारा सुने जाने का अवसर न मिल चुका हो ।

(3) इस धारा की कोई बात उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के निष्कर्ष को दोषसिद्धि के निष्कर्ष में संपरिवर्तित करने के लिए प्राधिकृत करने वाली नही समझी जाएगी ।

(4) जहां संहिता के अधीन अपील हो सकती है किंतु कोई अपील की नहीं जाती है वहां उस पक्षकार की प्रेरणा पर, जो अपील कर सकता था, पुनरीक्षण की कोई कार्यवाही ग्रहण न की जाएगी ।

(5) जहां इस संहिता के अधीन अपील होती है किंतु उच्च न्यायालय को किसी व्यक्ति द्वारा पुनरीक्षण के लिए आवेदन किया गया है और उच्च न्यायालय का यह

समाधान हो जाता है कि ऐसाआवेदन इस गलत विश्वास के आधार पर किया गया था कि उससे कोई अपील नहीं होती है और न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है तो उच्च न्यायालय पुनरीक्षण के लिए आवेदन को अपील की अर्जी मान सकता है और उस पर तदनुसार कार्यवाही कर सकता है ।''

2.14 वर्तमान में किसी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किसी पुनरीक्षणीय आदेश पर सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय में आक्षेप किया जा सकता है । इस उपबंध का बहुधा दुरुपयोग किया जाता है । यदि किसी मामले में कई अभियुक्त व्यक्ति है और कोई विरोधी आदेश पारित किया जाता है और उनमें से कुछ सत्र न्यायालय में आ जाते हैं और दूसरे उच्च न्यायालय में चले जाते हैं और अपने भाग्य की परीक्षा करते हैं । ऐसे अवसर हो सकते हैं जब एक पक्षकार सत्र न्यायालय मे पुनरीक्षण फाइल कर सकता है और विरोधी पक्षकार उसी आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में फाइल कर सकता है । इस प्रकार की न्यायालय की खोज तुरंत बंद की जानी चाहिए । पुनरीक्षण के लिए केवल एक मंच होना चाहिए अर्थात् मजिस्ट्रेटों द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध सत्र न्यायालय । जहां सत्र न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध पुनरीक्षणों के लिए केवल एक मंच है, वहां मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किसी आदेश पर आक्षेप करने के लिए दो वैकल्पिक मंच रखने की कोई आवश्यकता नहीं है । इससे न केवल समय कम लगेगा किंतु ऐसा करना मुकदमा लड़ने वालों के लिए कम व्यय वाला भी होगा और इससे उच्च न्यायालयों में लंबित मामलों में भी कमी अएगी । उच्च न्यायालयों में सभी ऐसे लंबित पुनरीक्षण सत्र न्यालयों को भी अंतरित किए जा सकते हैं ।

2.15 जैसा ऊपर देखा गया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 की उपधारा (2) उपबंध करती है कि कोई पुनरीक्षण किसी अपील, जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही में पारित किसी अंतर्वर्ती आदेश के विरुद्ध चलाने योग्य नहीं होगा । दंड प्रक्रिया संहिता ''अंतर्वर्ती आदेश'' अभिव्यक्ति को परिभाषित नहीं करती है । यद्यपि उक्त अभिव्यक्ति का

न्यायिक रूप से निर्वचन किया गया है[1], किंतु इससे संभ्रम ही उत्पन्न हुआ है और मुकदमा लड़ने वाले व्यक्तियों ने उससे कष्ट उठाया है । अब विधानमंडल द्वारा पुनरीक्षणीय आदेशों का विनिर्दिष्ट प्रवर्गीकरण किए जाने की आवश्यकता है और उसे दंड प्रक्रिया संहिता में ही इस सूची को दर्शित करना चाहिए । इससे अनावश्यक मुकदमेबाजी कम होगी । शेष मामले, यदि कोई हों तो, संबंधित न्यायालयों के न्यायिक विवेक पर छोड़े जा सकते हैं ।

(ग) संपत्ति का अंतरण अधिनियम, 1882

2.16 जब कोई व्यक्ति स्थावर संपत्ति का क्रय करता है तो विक्रय विलेख को रजिस्ट्रीकृत कराए जाने की अपेक्षा होती है । सामान्यतया क्रेता और विक्रेता विक्रय प्रतिफल के लिए नकद संव्यवहार दर्शित करते हैं और रजिस्ट्रार/उप रजिस्ट्रार द्वारा उस आशय का पृष्ठांकन भी किया जाता है । किंतु जब किसी व्यक्ति को गलत कार्य करना होता है तो विक्रय प्रतिफल का बड़ा भाग बाहर संदत्त किया गया दर्शित किया जाता है और रजिस्ट्रार/उप रजिस्ट्रर के समक्ष नहीं और यह अनावश्यक मुकदमेबाजी, अपराधिक और सिविल[2] दोनों को ही जन्म देता है । बैंकों के विशाल नेटवर्क के साथ और सामान्य जनता के बीच बढ़ती हुई चेतना से, एक ऐसा समय आ गया है कि इसे आज्ञापक बनाया जाए कि प्रत्येक विक्रय के लिए प्रतिफल का संदाय बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से किया जाएगा । इससे तुच्छ संव्यवहारों और साथ ही अनावश्यक मुकदमेबाजी पर नियंत्रण होगा ।

---

[1] देखिए उदाहरण के लिए एस. कुप्पूस्वामी राव ब. द किंग, ए.आई.आर. 1949 एफसी 1 ; अमर नाथ ब. हरियाणा राज्य (1977) 4 एस. सी. सी. 137 ; मधु लिमये ब. महाराष्ट्र राज्य, (1978) 1 एससीआर 749 ; वी. सी. शुक्ला ब. सीबीआई के माध्यम से राज्य, एआईआर 1980 एस. सी. 962 ; के. के. पटेल ब. गुजरात राज्य (2000) 6 एस. सी. सी. 195 ; राज्य ब. एन. एम. टी. जॉय इमेक्युलेट (2004) 5 एस .सी. सी. 729.

[2] देखिए उदाहरण के लिए कालियापेरूमल ब.राजगोपाल, 2009(4) स्केल 60; अकूला माधवराव ब. पी. रूकमणी बाई, 1995 (3) एएलटी 61 ; सी अब्दुल शुकूर साहेब ब. अर्जी पापा राव, एआईआर 1963 एस.सी. 1150.

III. सिफारिशें

3.1 हम आश्वस्त हैं कि यदि उपरोक्त आधारों पर संशोधन किए गए तो न केवल मुकदमा लड़ने वालों को शीघ्र और कम खर्चीला न्याय प्राप्त होगा किंतु मामलों का लंबित रहना भी कम हो जाएगा और तुच्छ मुकदमेबाजी पर नियंत्रण होगा ।

3.2 हम अनुभव करते हैं कि निम्नलिखित संशोधनों के लिए आवश्यकता है :

1. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 और आदेश V का तथा संबंधित न्यायालय के नियमों का संशोधन - विलंब कम करने के लिए, यह आवश्यक है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के समतुल्य उपबंधों का किसी मुकदमा लड़ने वाले के द्वारा फाइल किए जाने के लिए प्रस्तावित सभी प्रकार के सिविल वादों और मामलों के लिए प्रारंभ किया जाए ।

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378, धारा 397 और धारा 401 का संशोधन -

(i) परिवाद मामलों में भी किसी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध सत्र न्यायालय में अपील का, निःसंदेह, उसके द्वारा विशेष इजाजत दिए जाने के अधीन रहते हुए, उपबंध किया जाए ।

(ii) जहां जिला मजिस्ट्रेट या राज्य लोक अभियोजक को दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील करने का निदेश नहीं देता है वहां व्यथित व्यक्ति या सूचनाकर्ता को अपील करने का, यद्यपि अपील न्यायालय की इजाजत से, अधिकार होना चाहिए ।

(iii) मजिस्ट्रेटों द्वारा अर्थात् सत्र न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध पुनरीक्षण फाइल करने के लिए, दो वैकल्पिक मंचों के स्थान पर, जैसा अब उपबंधित है, केवल एक मंच होना चाहिए ।

(iv) विधानमंडल को विनिर्दिष्ट रूप से पुनरीक्षणीय आदेशों को प्रवर्गित करना चाहिए, बजाए इसके कि इस मामले को "अंतरवर्ती आदेश" अभिव्यक्ति के विभिन्न निर्वचनों द्वारा कारित संभ्रम के लिए छोड़ दिया जाए ।

3. संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 का संशोधन - यह आज्ञापक बनाया जाना चाहिए कि प्रत्येक विक्रय के लिए प्रतिफल का संदाय बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से किया जाएगा ।

3.3 हम तदनुसार सिफारिश करते हैं ।

ह/-

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्)

अध्यक्ष

ह/-

(प्रा. (डा.) ताहिर महमूद)

सदस्य

ह/-

(डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल)

सदस्य-सचिव